Evolution (विकास)

परीक्षोपयोगी प्रश्नोत्तर

बहुविकल्पीय प्रश्न

प्रश्न 1.
लुई पाश्चर के हंस ग्रीवा फ्लास्क (स्वान नेक फ्लास्क) प्रयोग से सिद्ध होता है – **(2017)**
(क) जीवात जीवोत्पत्ति
(ख) अजीवात जीवोत्पत्ति
(ग) आकस्मिक उत्पत्ति
(घ) विशिष्ट सृजन
उत्तर
(क) जीवात जीवोत्पत्ति

प्रश्न 2.
'पुनरावृत्ति सिद्धांत को प्रतिपादित करने वाले वैज्ञानिक का नाम है – **(2014, 17, 18)**
(क) डार्विन
(ख) माल्थस
(ग) वीजमान
(घ) हीकल
उत्तर
(घ) हीकल

प्रश्न 3.
पुनरावर्तन के सिद्धान्त के अनुसार – **(2016)**
(क) प्रत्येक जन्तु का प्रारम्भ एक अण्डे से होता है।
(ख) सन्तान जनकों के समान होती है
(ग) जीवन वृत्त में जाति वृत्त प्रतिबिम्बित होता है।
(घ) शरीर के क्षत भागों का पुनरुद्भवन होता है।
उत्तर
(ग) जीवन वृत्त में जाति वृत्त प्रतिबिम्बित होता है।

प्रश्न 4.
निम्नलिखित में से किसका सिद्धान्त जीवन की उत्पत्ति से सम्बन्धित नहीं है? **(2016)**
(क) स्टेनले मिलर
(ख) ए०आई० ओपेरिन
(ग) जे०बी०एस० हैल्डेन

(घ) माल्थस

उत्तर

(घ) माल्थस

प्रश्न 5.

निम्नलिखित में से कौन सरीसृपों एवं पक्षियों को जोड़ने वाली कड़ी माना जाता है? **(2014, 15)**

(क) डिप्नोई

(ख) आर्किओप्टेरिक्स

(ग) स्फीनोडॉन

(घ) कीवी

उत्तर

(ख) आर्किओप्टेरिक्स

प्रश्न 6.

चिड़ियों के पंख तथा घोड़े की अगली टाँगें दर्शाती हैं – **(2017)**

(क) समरूपता

(ख) समजातता

(ग) (क) तथा (ख) दोनों

(घ) कोई नहीं

उत्तर

(ख) समजातता

प्रश्न 7.

आकस्मिक आनुवंशिक परिवर्तन को कहते हैं – **(2017)**

(क) उत्परिवर्तन

(ख) समसूत्री विभाजन

(ग) अर्धसूत्री विभाजन

(घ) पुनर्सम्मिश्रण

उत्तर

(क) उत्परिवर्तन

प्रश्न 8.

विकास का उत्परिवर्तनवाद निम्नलिखित में से किसने प्रतिपादित किया था? **(2016)**

(क) चार्ल्स डार्विन

(ख) ए०आर० वैलेस

(ग) ह्यूगो डी ब्रीज

(घ) हक्सले

उत्तर
(ग) ह्यूगो डी ब्रीज

प्रश्न 9.
जैव विकास में उत्परिवर्तन का महत्त्व है – **(2017)**
(क) जननात्मक विलगन
(ख) आनुवंशिकी पुनर्संयोजन
(ग) आनुवंशिक विभिन्नताएँ
(घ) इनमें से कोई नहीं
उत्तर
(ग) आनुवंशिक विभिन्नताएँ।

प्रश्न 10.
डार्विन फिंचेज उदाहरण हैं – **(2017)**
(क) अनुकूली विकिरण का
(ख) जेनेटिक ड्रिफ्ट का
(ग) अनुकूली अभिसरण का
(घ) इनमें से कोई नहीं
उत्तर
(क) अनुकूली विकिरण का

प्रश्न 11.
निम्नलिखित किस सिद्धान्त को डार्विन ने प्रतिपादित नहीं किया था? **(2018)**
(क) पैंजेनेसिस
(ख) प्राकृतिक चयन
(ग) जनन प्रबल की निरन्तरता
(घ) लैंगिक चयन
उत्तर
(ग) जनन प्रबल की निरन्तरता

प्रश्न 12.
आधुनिक गानव का निकट सम्बन्धी है – **(2017)**
(क) गोरिल्ला
(ख) गिबन
(ग) ओरंग-उटान
(घ) चिम्पैंजी

उत्तर
(घ) चिम्पैंजी

प्रश्न 13.
निम्नलिखित में से कौन वास्तविक मानव है? **(2015)**
(क) निएण्डरथल मानव
(ख) होमो इरेक्टस
(ग) होमो हेबिलिस
(घ) शिवापिथिकस
उत्तर
(क) निएण्डरथल मानव

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1.
संयोजक कड़ी से आप क्या समझते हैं। उस जीवाश्म जन्तु का नाम बताइए जो प्रमाणित | करता है कि पक्षियों का विकास सरीसृपों से हुआ है। **(2013)**
या
आर्किओप्टेरिक्स किन वर्गों की संयोजी कड़ी है? **(2013, 16)**
उत्तर
जन्तु जगत में कुछ जीव ऐसे हैं जिनके लक्षण दो समीप वर्गों के लक्षणों से मिलते हैं। इनमें से एक वर्ग के जन्तु कम विकसित तथा दूसरे वर्ग के जन्तु अधिक विकसित होते हैं। ऐसे जन्तुओं को **संयोजी कड़ियाँ** (Connecting links) कहा जाता है।
उदाहरण – आर्किओप्टेरिक्स जो पक्षी तथा सरीसृप वर्ग के बीच की कड़ी है।

प्रश्न 2.
पेरीपैटस किन दो संघों के बीच की कड़ी है? **(2012)**
उत्तर
पेरीपैटस (Peripatus) को संघ आर्थोपोडा तथा एनेलिडा के बीच की कड़ी माना जाता है, क्योंकि इसमें इन दोनों ही संघों के लक्षण पाये जाते हैं।

प्रश्न 3.
एनेलिडा एवं आर्थोपोडा संघ तथा सरीसृप एवं पक्षी वर्ग को जोड़ने वाली कड़ियों के नाम लिखिए। **(2015)**
उत्तर
एनेलिडा एवं आर्थोपोडा संघ को जोड़ने वाली कड़ी-पेरीपैटस
सरीसृप एवं पक्षी वर्ग को जोड़ने वाली कड़ी-आर्किओप्टेरिक्स।

प्रश्न 4.
अवशेषी अंग से आप क्या समझते हैं? मनुष्य में पाये जाने वाले एक अवशेषी अंग का नाम लिखिए। **(2017)**
उत्तर
वे अंग जो हमारे पूर्वजों में क्रियाशील थे किन्तु उनका उपयोग न होने के कारण वे धीरे-धीरे । लुप्त हो गये और केवल अवशेष के रूप में पाये जाते हैं, अवशेषी अंग कहलाते हैं; जैसे- कृमिरूप परिशेषिका, पूँछ कशेरुका आदि।

प्रश्न 5.
पैन्जेनेसिस का सिद्धान्त तथा पुनरावृत्ति का सिद्धान्त किसने प्रतिपादित किया? **(2018)**
उत्तर
पैन्जेनिसस का सिद्धान्त डार्विन ने तथा पुनरावृत्ति का सिद्धान्त हीकल ने प्रतिपादित किया।

प्रश्न 6.
पूर्वजता या प्रत्यावर्तन को उदाहरण सहित समझाइए। **(2017, 18)**
उत्तर
किसी जीव या जीवों के समूह में किसी ऐसे लक्षण का आकस्मिक आना जो सामान्य रूप से उस जाति में नहीं पाया जाता परन्तु पहले किसी पूर्वज में पाया जाता था पूर्वजता या प्रत्यावर्तन कहलाता है। जैसे कभी-कभी बच्चे में जन्म के समय एक छोटी पूँछ का पाया जाना।

प्रश्न 7.
"योग्यतम की अतिजीविता' की परिकल्पना किसने प्रस्तुत की थी? **(2017)**
उत्तर
हरबर्ट स्पेन्सर ने योग्यतम की अतिजीविता का सिद्धान्त सामाजिक विकास के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया तथा डार्विन ने इसे जैव विकास के प्राकृतिक चयन के सम्बन्ध में समझाया।

प्रश्न 8.
डार्विन के जैव विकास के सिद्धांत में सबसे बड़ी कमी किस चीज की जानकारी न होनी थी? **(2014)**
उत्तर
डार्विन के जैव विकास के सिद्धांत में सबसे बड़ी कमी आनुवंशिकता की जानकारी न होनी थी।

प्रश्न 9.
जीवन संघर्ष से आप क्या समझते हैं? यह सिद्धान्त किस वैज्ञानिक ने प्रस्तावित किया? **(2015)**
उत्तर
प्रत्येक जीव को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दूसरे जीवों से संघर्ष करना पड़ता है। इसे ही जीवन संघर्ष कहते हैं। प्रत्येक जीव के लिए यह भ्रूणावस्था से प्रारम्भ होकर जीवनपर्यन्त चलता रहता है। यह सिद्धान्त डार्विन ने प्रस्तावित किया था।

प्रश्न 10.
रोमर के मतानुसार आधुनिक मानव की विभिन्न प्रजातियों के नाम लिखिए।
उत्तर
ए0एस0 रोमर (A.S. Romer) ने मानव प्रजातियों को निम्न चार प्रमुख समूहों में बाँटा है –

1. **कोकोसॉयड** (Caucasoid) – इनके बाल धुंघराले, नाक पतली तथा त्वचा सफेद होती है। ये यूरोप, दक्षिणी-पश्चिमी एशिया तथा उत्तरी अफ्रीका में विकसित हुए।
2. **नीग्रॉयड** (Negroid) – इनके बाल ऊनी व कुण्डलित, चौड़ी नाक तथा काली त्वचा थी। ये अफ्रीका, पेसिफिक द्वीप, कांगो, अण्डमान, मलाया, न्यूगिनी एवं फिलीपिन्स द्वीपों पर पाए जाते हैं।
3. **मोन्गोलॉयड** (Mongoloid) – इनके बाल सीधे, नाक बीच की तथा त्वचा पीली, भूरी होती है। इसमें चीनी, जापानी, मंगोल, एस्किमो तथा रेड इंडियन मिलते हैं।
4. **ऑस्ट्रेलॉयड** (Australoid) – इनके बाल धुंघराले, नाक बीच की तथा त्वचा भूरी होती है। ऑस्ट्रेलिया तथा अफ्रीका के बुशमैन, भारत के भील तथा श्रीलंका के वेढ़ा आदि इस प्रकार के मानव हैं।

प्रश्न 11.
वर्तमान मानव का वैज्ञानिक नाम लिखिए। **(2017)**
उत्तर
होमो सेपियन्स सेपियन्स (Homo sapiens sapiens)।

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1.
ओपैरिन की परिकल्पना पर टिप्पणी लिखिए। **(2014)**
या
जीवन की उत्पत्ति का रासायनिक मत बताइए। **(2015)**
उत्तर
आदि पृथ्वी पर रासायनिक उविकास के फलस्वरूप "जीवन की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विस्तृत और सर्वमान्य परिकल्पना रूसी जीव-रसायनशास्त्री ए०आई० ओपैरिन (A.I. Oparin) ने सन् 1924 में भौतिकवाद या पदार्थवाद (Materialistic Theory) के नाम से प्रस्तुत की। ओपैरिन की यह परिकल्पना 1936 में उनकी पुस्तक "The Origin of Life" में छपी। ऐसी ही परिकल्पना अंग्रेज, वैज्ञानिक हैल्डेन (Haldane) ने, जो 1961 में भारतीय नागरिक बन गए थे, सन् 1929 में प्रस्तुत की। इस परिकल्पना के अनुसार, पृथ्वी की उत्पत्ति और फिर इस पर जीवन की उत्पत्ति की पूरी प्रक्रिया को हम संक्षेप में आठ चरणों (steps) में बाँट सकते हैं –

1. **पहला चरण** – परमाणु प्रावस्था
2. **दूसरा चरण** – अणुओं एवं सरल अकार्बनिक यौगिकों की उत्पत्ति
3. **तीसरा चरण** – कार्बनिक यौगिकों की उत्पत्ति एवं उविकास
4. **चौथा चरण** – कोलॉइड्स, कोएसरवेट्स, वैयक्तिकता तथा रासायनिक स्वाधीनता

5. **पाँचवाँ चरण** – स्व: उत्प्रेरक तन्त्रों, जीन्स, वायरसों तथा प्रारम्भिक जीवों की उत्पत्ति
6. **छठाँ चरण** – प्रारम्भिक पूर्व केन्द्रकीय कोशिकाओं की उत्पत्ति
7. **सातवाँ चरण** – स्व: पोषण की उत्पत्ति
8. **आठवाँ चरण** – सुकेन्द्रकीय कोशिकाओं अर्थात् प्रोटिस्टा की उत्पत्ति

प्रश्न 2.
मिलर के प्रयोग का वर्णन कीजिए तथा नामांकित चित्र बनाइए। **(2013, 16)**
या
मिलर के चिनगारी विमुक्ति उपकरण का नामांकित चित्र बनाइए। **(2017)**
उत्तर
स्टेनले मिलर का प्रयोग (Stanley Miller's Experiment) – शिकागो विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक **हेरोल्ड यूरे** (Harold Urey) तथा **स्टेनले मिलर**(Stanley Miller) ने सन् 1953 में जीवन की उत्पत्ति के सन्दर्भ में प्रयोग किये। उन्होंने आदि पृथ्वी पर पाये जाने वाले आदि वातावरण की परिस्थिति को प्रयोगशाला में उत्पन्न किया तथा जीवन की उत्पत्ति की प्रयोगशाला में जाँच की। मिलर ने एक बड़े फ्लास्क में मेथेन, अमोनिया तथा हाइड्रोजन गैस 2 : 1 : 2 के अनुपात में ली।

गैसीय मिश्रण को टंगस्टन के इलेक्ट्रोड द्वारा गर्म किया गया। दूसरे फ्लास्क में जल को उबालकर जल वाष्प (water vapor-H,0) बनायी जिसे एक मुड़ी हुई काँच की नली द्वारा बड़े फ्लास्क में प्रवाहित किया। इसके उपरान्त दोनों के मिलने से बने मिश्रण को कण्डेन्सर द्वारा ठण्डा किया गया। ठण्डा मिश्रण एक U नली में एकत्रित किया गया जो गन्दे लाल रंग का द्रव था। इस प्रकार पूरे सप्ताह तक यह प्रयोग किया गया। प्रयोग द्वारा प्राप्त तरल द्रव का रासायनिक परीक्षण करने पर ज्ञात हुआ कि इसमें ग्लाइसीन (glycine); ऐलेनिन (alanine) नामक अमीनो अम्ल तथा अन्य

जटिल कार्बनिक यौगिकों का निर्माण हो गया था (चित्र)।

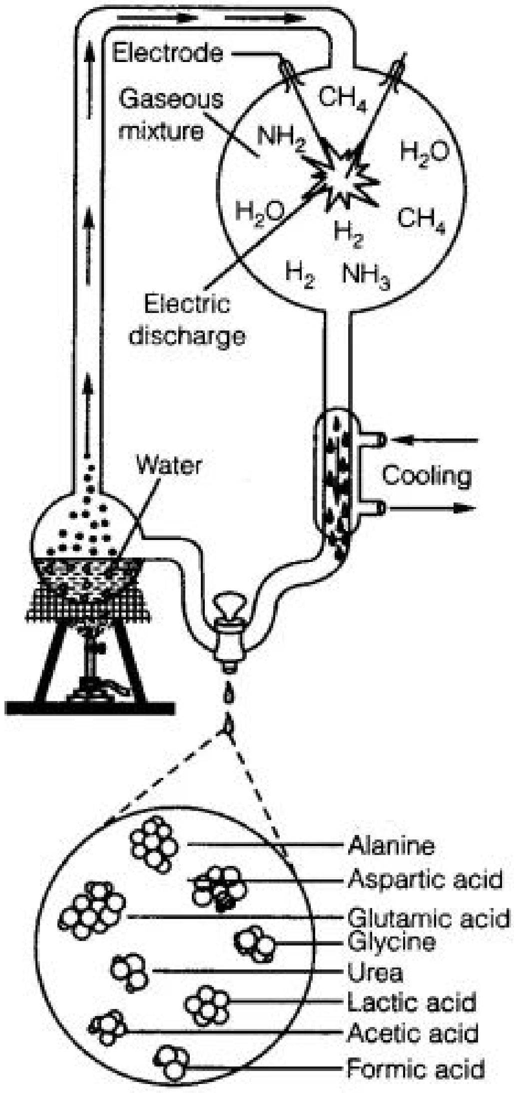

चित्र–मिलर का प्रयोग

इसी प्रकार अनेक वैज्ञानिकों; जैसे- सिडनी फॉक्स (Sydney Fox), केल्विन (Calvin) तथा मैल्विन (Melvin) आदि ने प्रयोगों द्वारा अनेक अमीनो अम्ल तथा जटिल यौगिकों का संश्लेषण किया। इन्हें अनुरूपण प्रयोग (simulation experiments) कहा जाता है।

प्रश्न 3.
उत्परिवर्तन क्या है ? जैव विकास में इसके महत्त्व पर प्रकाश डालिए। **(2010)**
या
'उत्परिवर्तन पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए। **(2011)**
या
उत्परिवर्तन की परिभाषा तथा कारण लिखिए। **(2012)**
या
उत्परिवर्तनवाद की व्याख्या कीजिए। **(2011)**
या
उत्परिवर्तन की परिभाषा दीजिए। उत्परिवर्तनवाद किस वैज्ञानिक ने दिया? **(2013, 14)**

उत्तर

उत्परिवर्तन

ह्यूगो डी ब्रीज (Hugo de Vries, 1848 – 1935), हॉलैण्ड के एक प्रसिद्ध वनस्पतिशास्त्री ने सांध्य प्रिमरोज (evening primrose) अर्थात् ऑइनोथेरा लैमार्किआना (Oenothera lamarckigna) नामक पौधे की दो स्पष्ट किस्में देखीं, जिनमें तने की लम्बाई, पत्तियों की आकृति, पुष्पों की आकृति एवं रंग में स्पष्ट भिन्नताएँ थीं। इन्होंने यह भी देखा कि अन्य पीढ़ियों में कुछ अन्य प्रकार की वंशागत विभिन्नताएँ भी उत्पन्न हुईं। डी ब्रीज ने इस पौधे की शुद्ध नस्ल की इस प्रकार की सात जातियाँ प्राप्त कीं। उन्होंने इन्हें प्राथमिक जातियाँ (primary species) कहा। जातीय लक्षणों में होने वाले इन आकस्मिक (sudden) वंशागत परिवर्तनों को डी ब्रीज ने उत्परिवर्तन (mutation) कहा और सन् 1901 में उन्होंने इस सम्बन्ध में एक उत्परिवर्तन सिद्धान्त प्रस्तुत किया।

उन्होंने बताया कि नयी जीव जातियों का विकास लक्षणों में छोटी-छोटी व अस्थिर विभिन्नताओं के प्राकृतिक चयन द्वारा न होकर एक ही बार में स्पष्ट एवं वंशागत आकस्मिक परिवर्तनों अर्थात् उत्परिवर्तनों के द्वारा होता है। उन्होंने यह भी बताया कि जाति का प्रथम सदस्य, जिसमें उत्परिवर्तन होता है, उत्परिवर्तक (mutant) है और यह शुद्ध नस्ल (pure breed) का होता है। उत्परिवर्तन की यह प्राकृतिक प्रवृत्ति (inherent tendency) लगभग सभी जीव-जातियों में पायी जाती है। उत्परिवर्तन अनिश्चित (indeterminate) होते हैं तथा लाभदायक अथवा हानिकारक दोनों प्रकार के हो सकते हैं। ये किसी एक अंग विशेष अथवा एक से अधिक अंगों में साथ-साथ हो सकते हैं।

एक जाति के विभिन्न सदस्यों में अलग-अलग प्रकार के उत्परिवर्तन हो सकते हैं। इस प्रकार एक जनक अथवा पूर्वज जाति से अनेक मिलती-जुलती नयी जातियों की उत्पत्ति सम्भव है। ये उत्परिवर्तन जननद्रव्य (germplasm) में होते हैं तथा इनसे उत्पन्न भिन्नताएँ वंशागत होती हैं।

मॉर्गन (T.H. Morgan, 1909) ने डी ब्रीज के विचारों से असहमति व्यक्त करते हुए ड्रोसोफिला (Drosophila) नामक फल मक्खी (fruit fly) पर आधारित अपने अध्ययन के आधार पर उत्परिवर्तनों को आकस्मिक रूप से होने वाले परिवर्तन बताया जो जीन या गुणसूत्रों में होते हैं। उन्होंने यह भी कहा कि केवल जननिक उत्परिवर्तन ही वंशागत होते हैं। ये प्रभावी एवं अप्रभावी दोनों प्रकार के हो सकते हैं। प्रभावी उत्परिवर्तन शीघ्र ही अभिव्यक्त हो जाते हैं, जबकि अप्रभावी उत्परिवर्तन कई पीढ़ियों बाद भी प्रकट हो सकते हैं। घातक उत्परिवर्तन प्राय: अप्रभावी होते हैं। उत्परिवर्तन की दर विकिरण (radiation), रासायनिक उत्परिवर्तकों (chemical mutagens) तथा वातावरणीय दशाओं आदि कारकों पर निर्भर करती है। उत्परिवर्तन शरीर के लगभग सभी लक्षणों को प्रभावित कर सकते हैं।

उत्परिवर्तन एवं जैव विकास

उत्परिवर्तन जैव विकास-क्रिया को सीधे ही प्रभावित करते हैं। इसे निम्नलिखित तथ्यों द्वारा भली प्रकार समझा जा सकता है –

1. उत्परिवर्तन बहुत ही अल्प समय में हो जाते हैं अत: जैव विकास की क्रिया में अत्यधिक महत्त्व रखते हैं।
2. संयोजी कड़ियों की उपस्थिति को उत्परिवर्तन सिद्धान्त द्वारा सहज ही समझा जा सकता है।
3. **डॉबजैन्स्की** (Dobzhansky) के अनुसार जीव को वातावरण के प्रति अनुकूल बनाने वाले उत्परिवर्तन प्राकृतिक चयन (natural selection) द्वारा शीघ्र जीनिक संरचना में संकलित हो जाते हैं। इस प्रकार

उत्परिवर्तनों का जैव विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है।

प्रश्न 4.
क्या सभी प्रकार के उत्परिवर्तन जीवों के लिए हानिकारक होते हैं? अगर नहीं तो क्यों?
उत्तर
सभी प्रकार के उत्परिवर्तन जीवों के लिए हानिकारक नहीं होते हैं क्योंकि कुछ उत्परिवर्तन तो संरचनात्मक होते हैं जिनके प्रभाव जीव के शरीर पर स्पष्ट दिखाई देते हैं; जैसे- हमारे बालों, त्वचा, नेत्रों आदि का काला या भूरा होना। इसके अतिरिक्त कुछ जीन उत्परिवर्तन के बाद जीव को (विशेषकर जीवाणुओं को) पूरकपोषी (auxotrophic) बना देते हैं। कुछ जीनी उत्परिवर्तन ही प्राण घातक (lethal) या प्रतिबन्धित प्राण घातक (conditional lethal) होते हैं।

प्रश्न 5.
जननिक/वंशागत एवं उपार्जित विभिन्नताओं/लक्षणों में अन्तर बताइए। **(2009)**
या
वंशागत तथा उपार्जित लक्षणों में अन्तर बताइए तथा प्रत्येक का एक उदाहरण दीजिए। **(2014, 16)**
या
वंशागत तथा उपार्जित लक्षणों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए। **(2017)**
उत्तर
जननिक/वंशागत तथा उपार्जित विभिन्नताओं/लक्षणों में अन्तर

जननिक/वंशागत विभिन्नताएँ/लक्षण	उपार्जित विभिन्नताएँ/लक्षण
• ये जीव के **जननद्रव्य** (germplasm) में प्रभावित होती हैं।	• इनका प्रभाव जीव के **देहद्रव्य** (somatoplasm) में होता है।
• ये जीन ढाँचे में परिवर्तन के कारण उत्पन्न होती हैं।	• ये वातावरणीय दशाओं के प्रभाव में शरीर में उत्पन्न होती हैं।
• लैमार्क तथा डार्विन भी इनके विषय में नहीं जानते थे।	• लैमार्क ने इन्हें उपार्जित लक्षणों का नाम दिया।
• ये वंशागत होती हैं।	• ये वंशागत नहीं होती हैं।
• **उदाहरण**—नेत्र की पुतलियों का जन्मजात रंग, बालों का रंग, शारीरिक लम्बाई आदि।	• **उदाहरण**—धूप में रहने पर त्वचा का रंग काला हो जाना, शिक्षा के साथ बुद्धि का विकसित होना आदि।

प्रश्न 6.
अनुकूली विकिरण क्या है? इसके किन्हीं तीन कारणों का उल्लेख कीजिए। **(2017)**
उत्तर
अनुकूली विकिरण (Adaptive Radiation) – एक विशेष भू-भौगोलिक क्षेत्र में विभिन्न प्रजातियों के विकास का प्रक्रम एक बिन्दु से प्रारम्भ होकर अन्य भू-भौगोलिक क्षेत्रों तक प्रसारित होने को अनुकूली विकिरण कहते हैं। उदाहरण- गैलापैगोस द्वीप समूह पर डार्विन की फिंचे पक्षियों का अनुकूली विकिरण तथा ऑस्ट्रेलिया में शिशुधानी जन्तुओं में अनुकूली विकिरण।। अनुकूली विकिरण के लिए उत्तरदायी तीन प्रमुख कारण निम्न हैं –

1. प्रकृति में एक जीव-जाति की उत्पत्ति एक बार तथा एक क्षेत्र में होती है।
2. किसी जाति की आबादी बढ़ने पर इसके सदस्य उत्पत्ति क्षेत्र के चारों ओर फैल जाते हैं।

3. एक ही जाति के जीवों में अलग-अलग वातावरण के अनुरूप परिवर्तन होने से नई प्रजातियाँ बनती हैं।

प्रश्न 7.
डार्विन के प्राकृतिक वरणवाद पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए। **(2012, 15)**
उत्तर
जैव विकास को समझाने के लिए डार्विन ने प्राकृतिक वरणवाद या प्राकृतिक चयनवाद प्रस्तुत किया। इसके अनुसार प्रत्येक जीव में सन्तान उत्पत्ति की प्रचुर क्षमता पाई जाती है। इनमें से अधिकांश जीव वृद्धि करके अपनी जनसंख्या बढ़ाते हैं। इस बढ़ी हुई जनसंख्या के कारण समान जाति या भिन्न-भिन्न जाति के जीवों के बीच अस्तित्व के लिए संघर्ष शुरू हो जाता है। ये संघर्ष प्रायः समान आवश्यकताओं के लिए होता है। संघर्ष में वे जीव ही जीतते हैं जिनमें सामान्य जीवों से हटकर कुछ अलग विभिन्नताएँ (variations) पाई जाती हैं। ये विभिन्नताएँ आनुवंशिक होती हैं और प्रकृति द्वारा जीवों में उत्पन्न की जाती हैं। इस प्रकार विभिन्नताओं से युक्त जीव ही आने वाली पीढ़ियों में जीवित रहते हैं। ये जीव वातावरण में होने वाले परिवर्तनों को सहने में समर्थ होते हैं।

प्रश्न 8.
लैमार्क के मूल आधार क्या थे? **(2013)**
उत्तर
लैमार्क के मूल आधार निम्नलिखित हैं –

1. जीव के आन्तरिक बल में जीवों के आकार को बढ़ाने की प्रवृत्ति होती है जिसका अर्थ यह है कि जीवों के पूरे शरीर तथा उनके विभिन्न अंगों में बढ़ने की प्रवृत्ति होती है।
2. जीवों की लगातार नयी जरूरतों के अनुसार नये अंगों तथा शरीर के दूसरे भागों का विकास होता है।
3. किसी अंग का विकास तथा उसके कार्य करने की क्षमता उसके उपयोग तथा अनुपयोग पर निर्भर करती है। लगातार उपयोग से अंग धीरे-धीरे मजबूत हो जाते हैं तथा पूर्णतः विकसित हो जाते हैं। जबकि उनके अनुपयोग से इसका उल्टा प्रभाव पड़ता है। इससे इन अंगों का धीरे-धीरे अपह्रास (degeneration) हो जाता है और अन्त में ये लुप्त हो जाते हैं।
4. इस प्रकार जीवनकाल में आये परिवर्तनों को जीव उपार्जित (acquire) कर लेता है और उसे आनुवंशिकी (heredity) द्वारा अपनी संतानों में पहुँचा देता है।

प्रश्न 9.
अंगों के कम या अधिक उपयोग का सिद्धान्त क्या है? इस सिद्धान्त को किस वैज्ञानिक ने प्रतिपादित किया था? **(2011)**
उत्तर
अंगों के कम या अधिक उपयोग का सिद्धान्त
फ्रांस के प्रसिद्ध जीवशास्त्री जीन बैप्टिस्ट डी लैमार्क (Jean Baptiste de Lamarck, 1744 – 1829) ने जैव विकास क्रिया को समझाने के लिए सर्वप्रथम उपार्जित लक्षणों का वंशागति सिद्धान्त प्रस्तुत किया, जो उनकी पुस्तक फिलोसफी जुलोजिक (Philosophic Zoologique) में सन् 1809 में प्रकाशित हुआ। उन्होंने अंगों के उपयोग एवं अनुपयोग के प्रभाव का सिद्धान्त भी दिया। उनके विचार लैमार्कवाद के नाम से प्रसिद्ध हैं। उनके अनुसार, वातावरण के

प्रभाव से अंगों में आकार वृद्धि की प्रवृत्ति होने के कारण तथा शरीर के कुछ अंगों का प्रयोग अधिक व कुछ का कम होने के कारण अधिक उपयोग में आने वाले अंग अधिक विकस्ति हो जाते हैं, जबकि कम उपयोग में आने वाले अंग कम विकसित हो पाते हैं।

कुछ अंगों को लगातार अनुपयोग होने के कारण उनका ह्रास (degeneration) भी होता है और ये अवशेषी अंगों (vestigial organs) के रूप में शेष रह जाते हैं या फिर लुप्त हो जाते हैं। जीवों के जीवनकाल में या तो वातावरण के सीधे प्रभाव से या फिर अंगों के अधिक अथवा कम उपयोग के कारण जो शारीरिक परिवर्तन होते हैं, वे उपार्जित लक्षण (acquired characters) कहलाते हैं। ये लक्षण वंशागत होते हैं तथा पीढ़ी-दर-पीढ़ी आने वाली सन्तानों में पहुँचते रहते हैं। इस प्रकार हजारों वर्ष पश्चात् । सन्तानें अपने पूर्वजों से पर्याप्त भिन्न होकर नयी-नयी जातियों का रूप ले लेती हैं।

प्रश्न 10.
लैमार्कवाद के अनुसार आधुनिक सर्प पैर रहित तथा बत्तख के पैर जालयुक्त होते हैं। समझाइए। **(2017)**
उत्तर
लैमार्क के अनुसार सर्प झाड़ियों तथा बिलों में रहता है तथा जमीन पर रेंगकर चलता है जिसके कारण उसके पैर इस्तेमाल नहीं होते थे तथा बिल में घुसने में भी बाधा उत्पन्न करते थे इसलिए इनके पैर धीरे-धीरे लुप्त होते चले गये जबकि अन्य सरीसृपों मे पैर उपस्थित होते हैं।

लैमार्क का मानना था कि बत्तख प्रारम्भ में स्थलीय थे जो खाने की खोज में पानी में जाया करते थे। पानी में चलने के लिए उन्हें अपने पंजे फैलाने पड़ते थे। इसके परिणामस्वरूप उनके पंजों के आधार पर त्वचा लगातार खिंचती गयी और पेशीय चलन से पंजों में रुधिर का बहाव बढ़ गया। अतः त्वचा ने अंगुलियों के बीच में पाद जाल का रूप ले लिया।

प्रश्न 11.
भौमिक समय सारणी क्या है? कौन-सा महाकल्प सरीसृप युग कहलाता है और क्यों? **(2017)**
उत्तर
पृथ्वी का आवरण बनने से लेकर पृथ्वी के इतिहास के सम्पूर्ण समय का मापक्रम भौमिक समय सारणी (geological time scale) कहलाता है।
मीसोजोइक महाकल्प को सरीसृप का युग कहा जाता है क्योंकि इस महाकल्प में पूरी पृथ्वी पर विशालकाय सरीसृपों जैसे डायनोसोर का आधिपत्य था।

प्रश्न 12.
मानव एवं कपि में समानताएँ और असमानताएँ बताइए। **(2014)**
या
मानव और कपि में चार अन्तर बताइए। **(2009,12,17)**
उत्तर
कपि और मानव में समानताएँ
कपि तथा मानव का विकास समान पूर्वजों से हुआ है। दोनों के लक्षणों में अनेक समानताएँ मिलती हैं: जैसे-वक्ष भाग का

चौड़ा होना, अँगुलियों में नाखूनों का होना, मस्तिष्क एवं कपालगुहा का चौड़ा होना, सिर बड़ा, गर्दन व पाद अपेक्षाकृत लम्बे, पूँछ को अभाव, प्रत्येक भौंह के नीचे हड्डी का उभार,पोषण शाकाहारी, कभी-कभी मांसाहारी, पति-पत्नी के रूप में गृहस्थ जीवन की भावना का विकास आदि।

कपि और मानव में अन्तर

कपि (Apes)	**मानव** (Men)
• कपि के अग्रपाद लम्बे तथा घुटनों के नीचे तक पहुँचते हैं। अग्रपादों तथा पश्चपादों से समान कार्य लेते हैं। पैर हाथों की तरह ही किसी वस्तु को पकड़ सकते हैं।	• कपि की अपेक्षा मानव के अग्रपाद छोटे होते हैं तथा घुटनों के ऊपर ही रहते हैं। अग्रपादों तथा पश्चपादों के कार्य भिन्न हैं। पैर किसी वस्तु को पकड़ने में सहायक नहीं होते।
• चारों पाद जन्तु का सन्तुलन बनाने में सहायक हैं। चार पादों पर चलता है और **चतुष्पादचारी** है।	• पश्चपाद सम्पूर्ण शरीर का भार उठाते हैं, साथ ही सन्तुलन बनाये रखने तथा सीधा चलने में सहायक होते हैं। सीधा (ऊर्ध्व) चलता है और **द्विपदचारी** है।
• इसका अँगूठा छोटा होता है तथा अँगुलियों के समानान्तर होता है, वस्तुओं को पकड़ने में सुविधाजनक नहीं है।	• मानव का अँगूठा अधिक विकसित तथा अँगुलियों के साथ समकोण पर होता है, वस्तु को सुविधापूर्वक तथा मजबूती से पकड़ने में सहायक है। इससे वह अपने हाथों का अनेक कार्यों के लिए उपयोग कर सकता है।
• मादा के **स्तन उभरे हुए नहीं होते**।	• मादा के **स्तन उभरे हुए** होते हैं।
• भौंहें मोटी तथा ऊँची होती हैं। माथा संकरा, नाक चपटी, चेहरा थूथन की तरह आगे निकला हुआ (प्रोग्नैथस = prognathus) होता है।	• भौंहें पतली तथा अपेक्षाकृत आँखों के पास होती हैं। माथा चौड़ा (ऊँचा), नाक उठी हुई, चेहरा चपटा (ऑर्थोग्नैथस = orthognathus) होता है।
• **महारन्ध्र** (foramen magnum) खोपड़ी के पीछे की ओर स्थित होता है। खोपड़ी कशेरुकदण्ड पर टँगी हुई होती है।	• महारन्ध्र खोपड़ी के नीचे स्थित होता है। खोपड़ी कशेरुक दण्ड पर सीधी सधी होती है।
• कपालगुहा का औसत आयतन 400-450 c.c. अत: मस्तिष्क बहुत कम विकसित।	• कपालगुहा का औसत आयतन 1450 c.c. अत: मस्तिष्क अत्यधिक विकसित।
• स्पष्ट तथा तर्कसंगत वाणी नहीं होती। इनमें सामाजिक जीवन, शिक्षा एवं भावनात्मक पक्ष का अभाव।	• स्पष्ट तथा तर्कसंगत वाणी विकसित होती है। इनमें सामाजिक जीवन, शिक्षा एवं भावनात्मक पक्ष सुविकसित।
• कपि पेड़ों पर वास करते हैं अर्थात् **वृक्षाश्रयी** (arboreal) हैं।	• मानव **स्थलवासी** (terrestrial) हैं।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1.

जैव विकास सिद्धान्त के समर्थन में उपस्थित विभिन्न प्रमाणों का उल्लेख कीजिए। **(2009, 12)**

या

जैव विकास के पक्ष में दिये जाने वाले किन्हीं तीन प्रमाणों की व्याख्या उदाहरण सहित कीजिए **(2011)**

या

समजातता की परिभाषा दीजिए। यह किस प्रकार समवृत्तिता से भिन्न है? इनका जैव विकास में क्या महत्त्व है?

या

जैव विकास के पक्ष में दिये जाने वाले विभिन्न प्रमाणों का उल्लेख कीजिए। तुलनात्मक शरीर रचना से सम्बन्धित

प्रमाणों की व्याख्या कीजिए। **(2014, 16)**

या

जैव विकास की मौलिक परिकल्पना क्या है? इसे प्रमाणित करने के लिए किन्हीं चार प्रमाणों के नाम लिखिए। **(2014, 16)**

या

समजात एवं समरूप अंगों की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए। **(2015)**

या

"व्यक्तिवृत्त में जातिवृत्त पुनरावृत्ति" की व्याख्या कीजिए। **(2017)**

या

आर्कियोप्टेरिक्सका विकास किस कल्प एवं युग में हुआ था? इसके सरीसृप वर्ग तथा पक्षी वर्ग का एक-एक लक्षण लिखिए। **(2017)**

या

समजात अंग और समरूप अंग का एक-एक उदाहरण देते हुए अन्तर स्पष्ट कीजिए। **(2017)**

या

समजात एवं समरूप अंगों में दो अन्तर लिखिए तथा प्रत्येक के दो उदाहरण दीजिए। **(2017)**

या

जैव विकास के पक्ष में तुलनात्मक आकारिकी एवं तुलनात्मक भौणिकी का वर्णन साक्ष्य या प्रमाण के साथ कीजिए। **(2015, 17)**

उत्तर

जैव विकास की मौलिक परिकल्पना

"परिवर्तन के साथ अवतरण (Descent with change or modification)" जैव विकास की मौलिक परिकल्पना है। "विकास या उद्विकास (evolution)" शब्द का साहित्यिक अर्थ है-"सिमटी वस्तु का खुलकर या फैलकर समय-समय पर हुए परिवर्तनों को प्रदर्शित करना (e, out + volvere, to roll = unrolling or unfolding to reveal modifications)", a mai fos साइकिल, मोटर, रेल, जहाज आदि के प्रथम नमूने घटिया और कम लाभदायक थे। यदि हम इन पब के आविष्कारों के बाद के इनके विकास-इतिहासों को पढ़े तो हमें पता लग जाएगा कि लोगो ने समय-समय पर इनमें क्या-क्या क्रमिक सुधार किए जिससे वर्तमान नमूनों का विकास हुआ। ठीक इसी प्रकार, जैव विकास का भी संक्षेप में मतलब यही है कि प्रत्येक जीव-जाति के लक्षणों में पीढ़ी-दर-पीढ़ी, प्राकृतिक आवश्यकताओं के अनुसार, कुछ परिवर्तन होते रहते हैं जो हजारों-लाखों वर्षों में इस जाति से नई, अधिक सुसंगठित एवं जटिल जातियों के विकास का कारण बनते हैं।

अत: जैव-विकास परिकल्पना के अनुसार, प्रत्येक वर्तमान जीव-जाति का विकास किसी-न-किसी, अपेक्षाकृत निम्न कोटि की, भूतकालीन (पूर्वज) जाति से हुआ है। इस प्रकार, प्रारम्भिक, निम्न कोटि के सरल जीवों से, क्रमिक परिवर्तनों द्वारा, अधिक विकसित एवं जटिल जीवों की उत्पत्ति को ही जैव विकास कहते हैं। अत: जीवन की उत्पत्ति के ओपैरिनवाद (Oparin theory) के अनुसार बने, प्रारम्भिक, कोशिकारूपी सरल आदिजीवों से, एक ओर जटिल एककोशिकीय जीवों का विकास हुआ तथा दूसरी ओर इनमें से कुछ ने समूहों में एकत्र होकर प्रारम्भिक बहुकोशिकीय जीवों की उत्पत्ति की। फिर प्रारम्भिक बहुकोशिकीय जीवों की कोशिकाओं के बीच धीरे-धीरे कार्यों का बँटवारा, अर्थात् श्रम विभाजन (division of labour) हो जाने से, इनमें कोशिकीय विभेदीकरण (cell differentiation) हुआ। इस

प्रकार, शनैः शनैः शरीर के अधिकाधिक सुचारू संघटन के कारण नई-नई उच्चतर श्रेणियों की जीव-जातियों का विकास होता गया।

जैव विकास के प्रमाण

वर्तमान युग में जीवों की उत्पत्ति प्राचीन काल के सरल जीवों से क्रमिक परिवर्तनों के फलस्वरूप हुई। इस तथ्य को प्रमाणित करने के लिए कुछ ठोस प्रमाण इस प्रकार हैं –

1. संयोजी कड़ियों से प्रमाण (evidences from connecting link)।
2. तुलनात्मक आकारिकी से प्रमाण (evidences from comparative morphology)
   - समजात अंगों से प्रमाण (evidences from homologous organs)।
   - समवृत्ति अंगों से प्रमाण (evidences from analogous organs)।

3. अवशेषी अंगों से प्रमाण (evidences from vestigial organs)।
4. वर्गीकरण से प्रमाण (evidences from classification)।
5. भ्रूण विज्ञान से प्रमाण (evidences from embryology)।
6. शरीर क्रिया-विज्ञान से प्रमाण (evidences from physiology)।
7. प्राणियों के भौगोलिक वितरण तथा पृथक्करण से प्रमाण (evidences from geographical distribution and isolation of animals)
8. आनुवंशिकी से प्रमाण (evidences from genetics)।
9. पूर्वजता (atavism or reversion)।
10. जीवाश्म विज्ञान से प्रमाण (evidences from palaeontology)।

संयोजक कड़ियाँ तथा उनसे जैव विकास के प्रमाण

कुछ जीव जातियों में दो समीप के वर्गों के लक्षण पाये जाते हैं। इनमें कम विकसित जातियों के साथ ही उच्च श्रेणी की अधिक विकसित जातियों के लक्षण मिश्रित रूप से पाये जाते हैं। ये संयोजक कड़ियाँ या संयोजक जातियाँ (connecting links or connecting species) कहलाती हैं तथा ये जैव विकास के ठोस प्रमाण प्रस्तुत करती हैं। संयोजक जातियों के कुछ महत्त्वपूर्ण उदाहरण इस प्रकार हैं –
(i) **विषाणु** (Virus) – इसे सजीव तथा निर्जीव के बीच की कड़ी माना जाता है।

(ii) **युग्लीना** (Euglena) – प्रोटोजोआ संघ का यह एक एककोशिकीय क्लोरोफिलयुक्त सदस्य है। सामान्य जन्तुसम भोजन प्राप्त करने तथा गति (movement) के कारण यह जन्तुओं से तथा क्लोरोफिल (chlorophyll) की उपस्थिति के कारण पादपों से समानता रखता है। इस प्रकार यह जन्तुओं एवं पादपों के मध्य संयोजक कड़ी के रूप में पहचाना जाता है।

(iii) **प्रोटेरोस्पंजिया** (Proterospongia) – प्रोटोजोआ संघ का यह एक निवही (colonial) जन्तु है। यह स्पंज (sponge) के समान कीप कोशिकाओं अथवा कोएनोसाइट्स (collared cells or choanocytes) का बना होता है। इस प्रकार यह प्रोटोजोआ एवं स्पंज के बीच की संयोजक कड़ी है।

(iv) **निओपिलाइना** (Neopling) – संघ मॉलस्का (mollusca) के इस जन्तु में कवच व मैण्टल (shell and mantle) पाये जाते हैं तथा इसके अधरतल पर चपटा व मांसल पाद (foot) भी होता है। प्रशान्त महासागर से प्राप्त इस जन्तु में खण्डयुक्त शरीर (segmented body), क्लोम (gills) तथा ट्रोकोफोर (trochophore) जैसी भ्रूण प्रावस्था आदि संघ ऐनेलिडा (annelida) के समान लक्षण भी पाये जाते हैं। यह इस बात को प्रमाणित करता है कि संघ मॉलस्का का विकास संघ ऐनेलिडा के सदस्यों से हुआ है।

(v) **पेरीपेंटस** (Peripatus) – संघ आर्थोपोडा (arthropoda) का यह एक सुंडी के समान (caterpillar like) जन्तु है, जिसमें समखण्डीय जोड़ीदार पाद, सिर पर एण्टिनी तथा संयुक्त नेत्र होते हैं। दूसरी ओर इसमें संघ ऐनेलिडा के समान काइटिनरहित क्यूटिकल तथा उत्सर्गिकाएँ (nephridia) पायी जाती हैं। इस प्रकार यह ऐनेलिडा से आर्थोपोडा के विकास को प्रमाणित करता है।

(vi) **आर्किओप्टेरिक्स** (Archaeopteryx) – इसका उद्भव मीसोजोइक महाकल्प के जुरैसिक . कल्प में हुआ था। इस पक्षी के जीवाश्म (fossils) लगभग 15 करोड़ वर्ष प्राचीन जुरैसिक (Jurassic) चट्टानों से प्राप्त हुए हैं। इसमें सरीसृपों (reptilia) के समान लम्बी पूँछ, चोंच में दाँत तथा अग्रपाद पंजे (claws) युक्त थे। पक्षियों के समान उड़ने के लिए इस जन्तु में विकसित पंख भी थे। इस प्रकार यह सरीसृपों एवं पक्षियों के बीच की संयोजक कड़ी है।

(vii) **प्रोटोथेरिया समूह के जन्तु** (Animals of Prototheria Group) – ऑस्ट्रेलिया में पाये जाने वाले कुछ वर्ग स्तनधारी (mammalia) के जन्तु हैं। इनकी तीन श्रेणियाँ एकिडना (echidna); जैसे- टैकीग्लॉसस (Tachyglossus), जैग्लॉसस (Jaglossus) तथा ऑर्निथोरिन्कस (Ornithorthynchus) हैं। इनमें एक ओर तो स्तनधारियों के समान शरीर पर बाल व दुग्ध ग्रन्थियाँ होती हैं तथा दूसरी ओर सरीसृपों के समान इनमें कर्ण पल्लवों का अनुपस्थित होना, क्लोएका (Cloaca) का पाया जाना, मादाओं का अण्डे देना आदि लक्षण पाये जाते हैं। इस प्रकार इन्हें सरीसृपों एवं स्तनधारियों के बीच की संयोजक कड़ी माना गया है।

जैव विकास के तुलनात्मक आकारिकी से प्रमाण

जन्तुओं की तुलनात्मक आकारिकी (comparative morphology) के अध्ययन से ज्ञात होता है कि एक ही उत्पत्ति के अंग भिन्न-भिन्न जन्तुओं में आवश्यकतानुसार भिन्न-भिन्न आकार-प्रकार के हो जाते हैं, जबकि अनेक जन्तुओं में एक कार्य को करने के लिए विकसित विभिन्न प्रकार की उत्पत्ति के अंगों में समरूपता होती है। इनको क्रमशः समजातता (homology) तथा समरूपता (analogy) कहते हैं।

समजातता एवं समजात अंग

सर रिचर्ड ओवन (Sir Richard Ovan-1843) ने समजातता की परिभाषा दी थी। जब अंगों की मूल रचना (basic structure) तथा उद्भव (origin) समान होते हैं, परन्तु इनके कार्यों में समानता होना आवश्यक नहीं होता तो यह समजातता (homology) कहलाती है अर्थात् समान उद्भव एवं मूल रचना वाले अंग जो भिन्न-भिन्न कार्यों के लिए अनुकूलित होते हैं, समजात अंग (homologous organs) कहे जाते हैं; जैसे-पक्षियों के पंख, सील (seal) के फ्लिपर (flipper), चमगादड़ का पैटेजियम (patagium), ह्वेल व पेंग्विन के चप्पू (paddle), घोड़े के अग्रपाद, मनुष्य के हाथ इत्यादि। विभिन्न प्राणियों में उपलब्ध समजातता यह स्पष्ट करती है कि इनका विकास समान पूर्वजों से ही हुआ

है। अतः समजातता अपसारी जैव विकास (divergent organic evolution) का प्रमाण प्रस्तुत करती है।

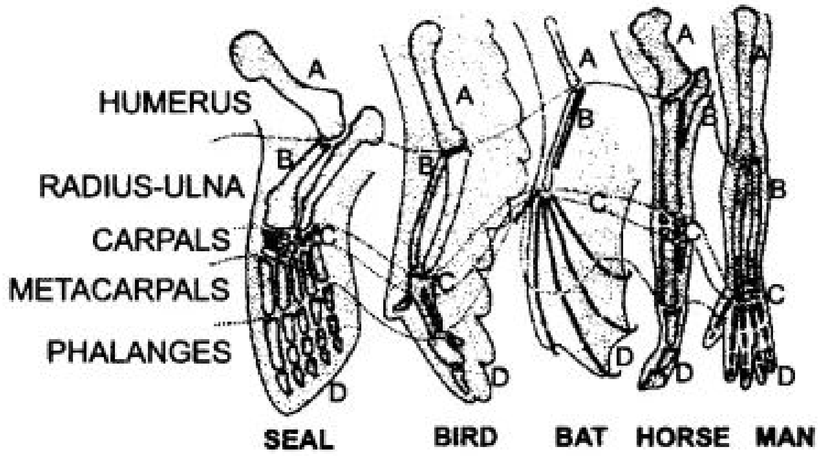

चित्र–विभिन्न कशेरुकियों के अग्रपादों में समजातता

समरूपता एवं समरूप अंग

ऐसे अंग जो समान कार्य के लिए अनुकूलित (adapted) हो जाने के फलस्वरूप एक जैसे दिखायी देते हैं, लेकिन मूल रचना एवं उत्पत्ति में भिन्न होते हैं, समरूप अंग (analogous organs) कहलाते हैं। इस स्थिति को समरूपता या समवृत्तिता (analogy) कहते हैं। कीट-पतंगों के पंख, पक्षियों एवं चमगादड़ के पंखों के समान दिखायी पड़ते हैं तथा उड़ने का कार्य करते हैं, परन्तु अकशेरुकीय होने के कारण कीटों के पंखों में कंकाल नहीं पाया जाता, जबकि चमगादड़ व पक्षी कशेरुकीय होते हैं और इनमें अस्थियों-उपास्थियों का कंकाल पाया जाता है। इस प्रकार मौलिक रचना में दोनों प्रकार के पंख एक-दूसरे से भिन्न होते हैं।

समरूपता से अभिसारी जैव विकास (convergent organic evolution) के प्रमाण प्राप्त होते हैं।

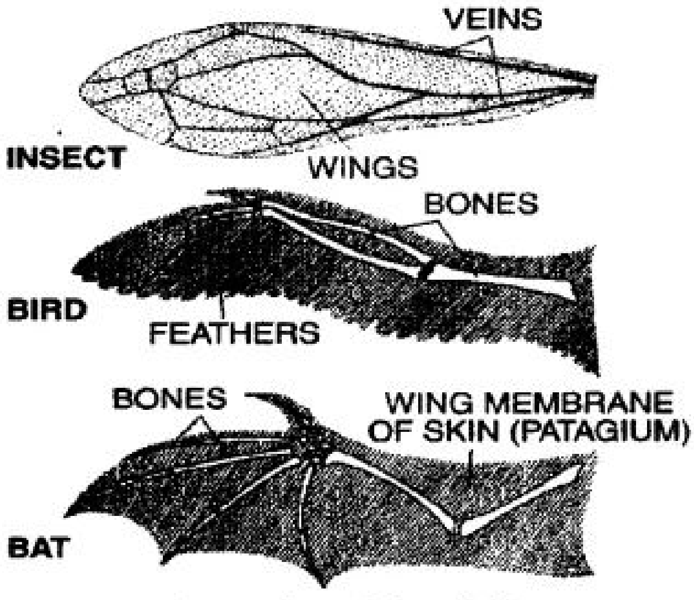

चित्र–कीटों एवं कशेरुकियों के पंखों में समरूपता

जैव विकास के तुलनात्मक भौणिकी से प्रमाण

यदि हम विभिन्न जन्तुओं की भ्रूणीय अवस्थाओं का अध्ययन करें तो हमें यह पता चलता है कि विभिन्न जन्तुओं के भ्रूण में उनकी प्रौढ़ अवस्थाओं से ज्यादा समानताएँ होती हैं। इस तथ्य से प्रभावित होकर वैज्ञानिक **अर्नस्ट हीकल** (Ernst Haeckel: 1834-1919) ने एक नियम बनाया जिसे उन्होंने **पुनरावृत्ति सिद्धांत**(recapitulation theory)

या **बायोजेनेटिक नियम** (biogenetic law) कहा **जिसके अनुसार**, **प्रत्येक जीव का व्यक्तिवृत्त उसके जातिवृत्त की पुनरावृत्ति करता है** (ontogeny repeats phylogeny)। व्यक्तिवृत्त (ontogeny) एक जीव का जीवन काल है जो अण्डाणु से शुरू होता है तथा जातिवृत्त (phylogeny) जीवों के परिपक्व या वयस्क पूर्वजों को वह क्रम है जो उस जीव समूह के जैव विकास के दौरान बने होंगे। इससे तात्पर्य यह है कि प्रत्येक जीव अपनी भौणिक अवस्था में अपने पूर्वजों के इतिहास को प्रदर्शित करता है अर्थात् पुनरावृत्ति सिद्धांत के अनुसार **उच्च कोटि या जाति के जन्तुओं की भौणिक अवस्था उनके पूर्वजों की वयस्क अवस्था से मिलती है।**

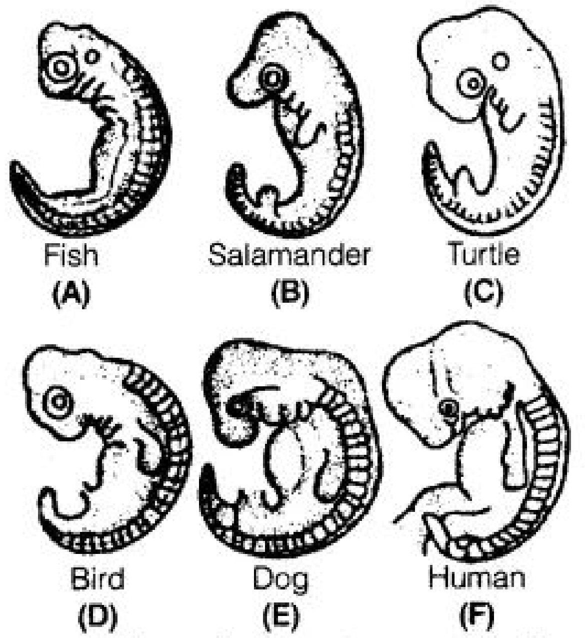

चित्र–विभिन्न कशेरुकियों की प्राथमिक भ्रूणावस्था में समानता

सभी बहुकोशिकीय जीवों में लैंगिक जनन के समय अण्डाणु तथा शुक्राणु के संयोजन से युग्मनज (zygote) बनता है जिसमें विदलन (Cleavage) के फलस्वरूप, मोरूला, ब्लास्टुला, गेस्ट्रला अवस्थाएँ पायी जाती हैं जिससे आगे चलकर भ्रूण का विकास होता है। यदि हम विभिन्न कशेरुकियों के भ्रूण को पास-पास रखकर अध्ययन करें तो उसमें बहुत-सी समानताएँ दिखाई देती हैं; जैसे- क्लोम तथा क्लोम दरारें, नोटोकॉर्ड, दो वेश्मी हृदय तथा पूँछ। इस अध्ययन से यह प्रमाणित हो । जाता है कि सभी कशेरुकियों का विकास मछलियों के समान किसी निम्न श्रेणी के जन्तु से हुआ है। इसलिये **वान बियर** (Von Baer, 1792 – 1876) ने इससे पहले भ्रूणीय परिवर्धन के चार मूल सिद्धान्त दिये जो निम्नलिखित हैं –

1. सामान्य लक्षण (general characters) विशिष्ट लक्षणों (special characters) से पहले बनते हैं।
2. ज्यादा सामान्य लक्षणों से कम सामान्य लक्षण तथा फिर विशिष्ट लक्षण विकसित होते हैं।
3. परिवर्धन के समय भ्रूण धीरे-धीरे दूसरे जीवों के भ्रूण से अलग होता जाता है।
4. किसी जन्तु की प्रारम्भिक भ्रूण अवस्था दूसरे कम विकसित जन्तु के भ्रूण से ज्यादा मिलती है। न कि उसके वयस्क से।

प्रश्न 2.
जैव विकास के पक्ष में जीवाश्म विज्ञान के प्रमाण पर टिप्पणी लिखिए। **(2016, 18)**
उत्तर
जैव विकास के जीवाश्म विज्ञान से प्रमाण

(Gr. **Palaeos** = ancient, **onta** – existing things and **logous** = science) जीवाश्म (fossil) का अध्ययन जीवाश्म विज्ञान (Palaeontology) कहलाता है। जीवाश्म का अर्थ उन जीवों के बचे हुए अंश से है जो अब से पहले लाखों-करोड़ों वर्षों पूर्व जीवित रहे होंगे। जीवाश्म लैटिन शब्द फॉसिलिस (fossilis) से बना है जिसका मतलब है खोदना (dug up)। यह जीव विज्ञान की एक महत्त्वपूर्ण शाखा है जो जीव विज्ञान (Biology) और भूविज्ञान (Geology) को जोड़ती है।

जीवाश्म का बनना

1. **अश्मीभूत जीवाश्म** (Petrified Fossils) – जीवाश्म मुख्यत: अवसादी शैल (sedimentary rocks) में पाये जाते हैं जो समुद्र या झीलों के तल पर रेत के जमा हो जाने से बनते हैं। मरे हुए जीवों का पूरा शरीर रेत से ढक जाता है तथा धीरे-धीरे यह ठोस पत्थर में परिवर्तित हो जाता है। इसी प्रकार मृत जीवों के विभिन्न भागों का एक स्पष्ट अक्स (चित्र) पत्थर पर बन जाता है इस क्रिया को अश्मीभवन (petrifaction) कहते हैं तथा इस प्रकार बने जीवाश्मों को अश्मीभूत जीवाश्म (perified fossils) कहते हैं।

2. **साँचा जीवाश्म** (Mould Fossils) – उन जीवाश्मों में जिनमें शरीर का कोई भाग शेष नहीं | रहता केवल शरीर का साँचा मात्र रह जाता है, इसे साँचा जीवाश्म (mould fossils) कहते हैं।

3. **अपरिवर्तित जीवाश्म** (Unaltered Fossils) – जब जीवधारी का पूरा शरीर बर्फ में भली प्रकार से सुरक्षित रहकर सम्पूर्ण जीवाश्म बनाता है तब इन्हें अपरिवर्तित जीवाश्म (unaltered fossils) कहते हैं।

4. **ठप्पा जीवाश्म** (Print Fossils) – कभी-कभी मरने के बाद सड़ने से पहले जीव चट्टानों पर अपना ठप्पा बना जाते हैं, ऐसे जीवाश्म को ठप्पा जीवाश्म (print fossils) कहते हैं।

जीवाश्म का महत्त्व

जीवाश्म के अध्ययन से जीवों की उपस्थिति का पता चलता है। जीवाश्म यह भी दर्शाते हैं कि विभिन्न पौधों एवं जन्तुओं में जैविक विकास किस तरह हुआ। निम्न तथ्यों से इसका पता चलता है –

1. विभिन्न भूवैज्ञानिक स्तरों से प्राप्त जीवाश्म विभिन्न वंशों के होते हैं।
2. सबसे नीचे पाये जाने वाले भूवैज्ञानिक स्तरों में सबसे सरल जीव होते थे, उससे ऊपर पाये जाने वाले स्तरों में क्रमशः जटिल जीवों के जीवाश्म पाये जाते हैं। इससे पता चलता है कि जन्तुओं का विकास निम्न प्रकार से हुआ –
   एककोशिकीय प्रोटोजोआ → बहुकोशिकीय जन्तु → अकशेरुक जन्तु → कशेरुक जन्तु।
3. विभिन्न स्तरों से प्राप्त जीवाश्मों से पता चलता है कि विभिन्न वर्गों के जीवों के बीच की संयोजी कड़ी भी थी जो जैव विकास की जटिल गुत्थी को सुलझाने में सहायक है।
4. जीवाश्मों के अध्ययन से किसी एक जन्तु की वंशावली (pedigree) का क्रम पता चलता है।
5. जीवाश्मों के आधार पर भूवैज्ञानिकों ने भूवैज्ञानिक समय सारणी बनायी जिसके आधार पर यह कह सकते हैं कि पौधों में पुष्पधारी पौधे (angiosperms) तथा जन्तुओं में स्तनधारी (mammals) सबसे आधुनिक एवं विकसित हैं।

प्रश्न 3.
जैव विकास से आप क्या समझते हैं? डार्विन के जैव विकास के सिद्धान्त का वर्णन कीजिए। **(2015)**
या
'योग्यतम की अतिजीविता का सिद्धान्त किसने प्रतिपादित किया था? इस सिद्धान्त को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए। **(2017)**
उत्तर
जैव विकास
प्रारम्भिक निम्न कोटि के सरल जीवों से क्रमिक परिवर्तनों द्वारा, अधिक विकसित एवं जटिल जीवों की उत्पत्ति को जैव विकास कहते हैं।

डार्विनवाद
यह डार्विन की ही विचारधारा थी कि प्रकृति जन्तु और पौधों का इस प्रकार चयन करती है कि वह जीव जो उस वातावरण में रहने के लिये सबसे अधिक अनुकूलित होते हैं संरक्षित हो जाते हैं और वह जीव जो कम अनुकूलित होते हैं नष्ट हो जाते हैं। प्राकृतिक चयनवाद को समझाने के लिये डार्विन ने अपने विचारों को निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया –

1. **संख्या में तेजी से बढ़ जाने की प्रवृत्ति**
प्रत्येक जीव की यह प्रवृत्ति होती है कि वह अपनी संख्या में अधिक से अधिक वृद्धि करे लेकिन उससे उत्पन्न सभी संतानें जीवित नहीं रह पातीं क्योंकि उनकी उत्पत्ति की संख्या ज्यामितीय अनुपात में होती है जबकि रहने और खाने की जगह स्थिर होती है। इसलिये यदि सबसे धीमी गति से प्रजनन करने वाले जीव पर भी प्राकृतिक अंकुश न लगे तो वह पूरी पृथ्वी के भोजन व स्थान को समाप्त कर देगा। इसके लिये उन्होंने सबसे मन्द गति से प्रजनन करने वाले हाथी का उदाहरण लिया, जो लगभग 100 वर्षों तक जीवित रहता है। एक जोड़ा हाथी 30 वर्ष की उम्र में प्रजनन करना शुरू करता है तथा 90 वर्ष तक करता रहता है। इस बीच यह औसतन 6 बच्चों की उत्पत्ति करता है।

उन्होंने हिसाब लगाया कि यदि हाथी की सभी संतानें जीवित रहें तो एक जोड़ा हाथी 740-750 सालों में लगभग 19 मिलियन हाथी पृथ्वी पर पैदा कर देगा। इसी प्रकार यदि एक जोड़ी मक्खी अप्रैल में प्रजनन करना शुरू करती है और उसका प्रत्येक अण्डा जीवित रहे तथा उससे निकली मक्खी पुन: प्रजनन करती रहे तो अगस्त के अन्त तक 191×1018 मक्खियाँ पैदा हो जायेंगी। इसी प्रकार मादा टोड एक बार में 12,000 अण्डे देती है। और यदि वे सब जीवित रहें तो यह अन्दाजा लगाया जा सकता है कि पृथ्वी पर कितने टोड हो जायेंगे। इसी प्रकार एक कवक 65 करोड़ बीजाणु (spores) तथा एक समुद्री सीप 60 लाख अण्डे प्रतिवर्ष देती है।

2. **सीमान्त कारक**
हमारी पृथ्वी हाथियों से क्यों नहीं रोधी हुई है, हमारे खेत टोड से क्यों नहीं ढके हुए हैं, हमारे तालाब आयस्टर से क्यों नहीं भरे हुए हैं? क्योंकि प्रत्येक जाति को रोकने के लिये कुछ बाधक कारक होते हैं। जिससे उसकी संख्या सीमित हो जाती है। कुछ महत्त्वपूर्ण सीमान्त कारक इस प्रकार से हैं –

1. **सीमित भोज्य सामग्री** (Limited Food) – जनसंख्या भोज्य सामग्री की कमी के कारण सीमित हो जाती है। डार्विन इस बात में माल्थस (Malthus) के सिद्धान्त से सहमत थे जिनके अनुसार जनसंख्या ज्यामितीय अनुपात

में बढ़ती है और भोज्य सामग्री बहुत धीमी गति से।

2. **परभक्षी जन्तु** (Predatory Animals) – परभक्षी जन्तु जनसंख्या पर अंकुश लगाते हैं; जैसे- अफ्रीका के जंगलों से यदि शेर को खत्म कर दिया जाये तो जेब्रा की जनसंख्या उस समय तक इतनी बढ़ जायेगी जब तक कि सीमित भोज्य सामग्री व रोग उनके लिये बाधक न बन जाये।
3. **रोग** (Disease) – रोग तीसरा सीमान्त कारक है। जब भी जनसंख्या की अति हो जाती है तो कोई न कोई महामारी इस पर रोक लगा देती है।
4. **स्थान** (Space) – स्थान की कमी के कारण भी जनसंख्या की अनियमित वृद्धि रुक जाती है। क्योंकि इसकी वजह से भुखमरी, महामारी हो जाती है तथा प्रजनन भी सीमित हो जाता है।
5. **प्राकृतिक विपदाएँ** (Natural Calamities) – जन्तु के अचेत वातावरण में कोई भी बदलाव बाधक बन जाता है; जैसे- सूखा, बाढ़, तूफान, अत्यधिक गर्मी व ठण्ड आदि।

3. **जीवन के लिये संघर्ष**

यह देखा गया है कि प्रत्येक प्रजाति की प्रत्येक पीढ़ी में अधिक से अधिक व्यष्टि (individuals) उत्पन्न करने की प्रवृत्ति होती है जो उपरोक्त दिये गये सीमान्त कारकों से सीमित हो जाती है- जैसे खाना, साथी, स्थान आदि के लिये होड़ (competition), परभक्षी जन्तु, रोग तथा प्राकृतिक विपदाएँ। इस प्रक्रिया को डार्विन ने **जीवन के लिये संघर्ष** (struggle for existence) कहा। यही संघर्ष निर्णय करता है कि कौन-सी व्यष्टि सफल होगी और कौन-सी नहीं।

जीवन के लिये संघर्ष तीन तरह से हो सकते हैं –

(i) **सजातीय संघर्ष** (Intraspecific Struggle) – अपने ही तरह की अर्थात् एक ही जाति के सदस्यों में आपस में होने वाले संघर्षों को सजातीय संघर्ष (intraspecific struggle) कहते हैं। जंगल में एक ही पेड़ के नीचे उगे उसी जाति के छोटे-छोटे पौधे इसका अच्छा उदाहरण हैं, उन पौधों में से कुछ मिट्टी तथा नमी की कमी से मर जाते हैं तथा बचे हुए पौधों में से कुछ लम्बे होकर अविकसित छोटे पौधों की हवा व रोशनी रोक देते हैं जिसके कारण छोटे पौधे खत्म हो जाते हैं। इस प्रकार उस क्षेत्र में पेड़ों की संख्या लगातार गिरती रहती है तथा कुछ ही पौधे परिपक्व हो पाते हैं।

(ii) **अन्तरजातीय संघर्ष** (Interspecific Struggle) – प्रकृति में सबसे अधिक संघर्ष अन्तरजातीय होता है अर्थात् एक साथ रहने वाली विभिन्न जातियों के बीच संघर्ष। एक जाति दूसरे जाति का भोजन बन जाती है। मनुष्य इस प्रकार के संघर्ष में सबसे अग्रणी है। जो जीव इस संघर्ष में खत्म हो जाते हैं वे अपने इस नुकसान को या तो पूरा करते हैं या खत्म हो जाते हैं।

(iii) **वातावरणीय संघर्ष** (Environmental Struggle) – सभी जातियाँ प्रतिकूल वातावरण; जैसे- अत्यधिक सर्दी व गर्मी, बाढ़, सूखा, तूफान आदि से अपने आपको बचाने के लिये लगातार संघर्ष करती रहती हैं।

4. विभिन्नताएँ

यह बात सर्वविदित है कि दो जीव कभी भी एक से नहीं हो सकते। एक ही माता-पिता की दो संतानें भी कभी एक-सी नहीं होतीं, इसी को **विभिन्नताएँ**(variations) कहते हैं। विभिन्नताएँ जैव विकास की एक मूल आवश्यकता तथा प्रगामी कारक हैं क्योंकि बिना विभिन्नताओं के जैव विकास नामुमकिन है। विभिन्नताएँ दो प्रकार की होती हैं-एक तो वह

जो पीढ़ी दर पीढ़ी वंशागत हो जाती हैं तथा दूसरी वह जो केवल उस जीव के जीवन काल में ही होती हैं लेकिन वंशागत नहीं होतीं।

5. योग्यतम की उत्तरजीविता

हरबर्ट स्पेन्सर (Herbert Spencer) ने योग्यतम की उत्तरजीविता का सिद्धान्त सामाजिक विकास के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया। डार्विन इससे अत्यधिक प्रभावित हुए तथा उन्होंने इसे जैव विकास के प्राकृतिक चयन के सम्बन्ध में समझाया। डार्विन के अनुसार जीवन के संघर्ष में वही जीव सफल होते हैं जो वातावरण के अनुरूप अनुकूलित हो जाते हैं। यह अधिक सफल जीवन व्यतीत करते हैं, इनकी जनन क्षमता भी अधिक होती है तथा यह स्वस्थ संतानों को उत्पन्न करते हैं, जिससे उत्तम लक्षण पीढ़ी दर पीढ़ी वंशागत हो जाते हैं और इस प्रकार उत्पन्न संताने वातावरण के प्रति अधिक अनुकूल होती हैं। इसके साथ ही वातावरण के प्रतिकूल प्राणी नष्ट हो जाते हैं इसी को डार्विन ने **प्राकृतिक वरण या चयन (**natural selection) कहा।

डार्विन ने **प्राकृतिक वरण द्वारा योग्यतम की उत्तरजीविता को लैमार्क के जिराफ** द्वारा समझाया। जिराफ की गर्दन तथा पैरों की लम्बाई में अत्यधिक विभिन्नताएँ होती हैं। घास के मैदानों की कमी के कारण इन्हें ऊँचे पेड़ों की पत्तियों पर निर्भर होना पड़ा जिसके फलस्वरूप वह जिराफ जिनमें लम्बी गर्दन व टाँगें थीं, वह छोटी गर्दन व टाँगों वाले जिराफ से ज्यादा अनुकूलित पाये गये। लंबी गर्दन वाले जिराफ को उत्तरजीविता का अधिक अवसर मिला तथा वह संख्या में बढ़ने लगे तथा छोटी गर्दन वाले जिराफ लुप्त हो गये।

6. **नयी जाति की उत्पत्ति**

वातावरण निरन्तर परिवर्तित होता रहता है जिससे जीवों में उनके अनुकूल रहने के लिए विभिन्नताएँ आ जाती हैं। यह विभिन्नताएँ पीढ़ी दर पीढ़ी जीवों में इकट्ठा होती रहती हैं। धीरे-धीरे वह अपने पूर्वजों से इतने भिन्न हो जाते हैं कि वैज्ञानिक उन्हें **नई जाति** (species) का स्थान दे देते हैं। इसी के आधार पर डार्विन ने जाति के उद्भव का सिद्धान्त प्रस्तुत किया।

प्रश्न 4.

नवडार्विनवाद से आप क्या समझते हैं? इसकी आधुनिक स्थिति की विवेचना कीजिए। **(2011,15)**

या

जन्तुओं में मुख्य विकासीय प्रवृत्तियों का निरूपण कीजिए। **(2011)**

या

जैव विकास के आधुनिक संश्लेषणात्मक सिद्धान्त की विवेचना कीजिए। **(2014, 15)**

या

नवडार्विनवाद पर एक टिप्पणी लिखिए। **(2014, 16)**

उत्तर

नवडार्विनवाद/जैव विकास का आधुनिक संश्लेषणात्मक सिद्धांत

वर्ष 1930 तथा 1945 के मध्य आधुनिक खोजों के आधार पर डार्विनवाद में कुछ परिवर्तन सम्मिलित किये गये तथा प्राकृतिक चयनवाद को पुनः मान्यता प्राप्त कराने वालों में वीजमान (Weismann), हैल्डेन (Haldane), जूलियन हक्सले (Julian Huxley), गोल्डस्मिट (Goldschmidt) तथा डॉबजैन्स्की (Dobzhansky) आदि हैं।

डॉडसन (Dodson) के अनुसार, जैव विकास का आधुनिक संश्लेषित मत (moderm synthetic theory of evolution) ही वास्तव में नवडार्विनवाद है। नवडार्विनवाद के अनुसार नयी जातियों की उत्पत्ति निम्नांकित पदों के आधार पर होती है –

1. **विभिन्नताएँ** (Variations) – ये जीन विनिमय (crossing over) के कारण, माता-पिता के गुणसूत्रों के लैंगिक जनन में सम्मिलित होने के कारण उत्पन्न होती हैं। केवल ऐसी विभिन्नताएँ जो लाभदायक हों तथा जिनकी वंशागति हो, जैव विकास में सहायक रहती हैं।
2. **उत्परिवर्तन** (Mutations) – जीन्स के स्तर पर होने वाले आकस्मिक परिवर्तन जो प्रायः आनुवंशिक होते हैं, उत्परिवर्तन कहलाते हैं।
3. **प्राकृतिक चयन** (Natural selection) – बदलती हुई परिस्थितियों में जिन जीवों में लाभदायक विभिन्नताएँ एवं उत्परिवर्तन हो जाते हैं, वे जीव जीवन संघर्ष में अधिक सफल रहते हैं। ये सदैव वातावरण के अनुकूल बने रहते हैं।
4. **लैंगिक पृथक्करण** (Sexual Isolation) – क्रियात्मक एवं भौगोलिक कारकों; जैसे- मरुस्थल, पर्वत, समुद्र, नदियों आदि के प्रभाव में प्रायः जीवों के अन्तराजनन में बाधा पहुँचती है।

इस प्रकार जीनी विभिन्नताओं द्वारा जीवों में परिवर्तन (variations) आते हैं। प्राकृतिक वरण (natural selection) तथा जनन पृथक्करण जीवों को अनुकूलित दिशा में ले जाते हैं। इसके अतिरिक्त तीन सहायक प्रक्रियाएँ-प्रवास (migration), संकरण (hybridization) तथा अवसर (chance) जैव विकास को आगे बढ़ाने, उसका मार्ग तथा दिशा बदलने में सहायक होती हैं। वर्ष 1905 में मेंडलवाद की पुनखज होने तथा जैव विकास में डॉबजैन्स्की (Dobzhansky, 1937) द्वारा आनुवंशिकी को जातियों की उत्पत्ति में महत्व देने पर जैव विकास के आधुनिक संश्लेषणात्मक सिद्धान्त की नींव पड़ी। ऐसा डार्विनवाद व मंडलवाद के नियमों को जीव-जातियों की समष्टियों (आबादियों) पर एक साथ लागू करने पर सम्भव हुआ। इसे पहले नवडार्विनवाद (neodarwinism) कहा गया।

इस प्रकार "जैव विकास के आधुनिक संश्लेषणात्मक सिद्धान्त' की नींव डॉबजैन्स्की (Dobahansky, 1937) की पुस्तक, "आनुवंशिकी तथा जातियों की उत्पत्ति' (Genetics and the Origin of Species) से पड़ी। यह नाम जूलियन हक्सले (Julian Huxley, 1942) ने दिया। इस सिद्धान्त के विकास में मुलर (Muller, 1949), फिशर (Fisher, 1958), हैल्डेन (Haldane, 1932), राइट (Wright, 1968), मेयर (Mayer, 1963, 1970), स्टेबिन्स (Stebbins, 1966-1976) आदि वैज्ञानिकों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इस सिद्धान्त में जैव विकास की क्रिया-विधि को जीव-जातियों की समष्टियों की आनुवंशिकी के सन्दर्भ में समझाया गया है। इसके अनुसार, किसी जीव जाति की विभिन्न क्षेत्रों की समष्टियों में उपस्थित आनुवंशिक अर्थात् जीनी विभिन्नताओं पर प्राकृतिक चयन तथा जननिक पृथक्करण (reproductive isolations) कम करके समष्टियों को नयी-नयी अनुकूलन योग्य दिशाओं की ओर मोड़ते रहते हैं जिससे नयी जातियों का विकास सम्भव होता है।

लघु उविकास तथा वृहत् उदविकास

जैव विकास को लघु उविकास तथा वृहत् उविकास में बाँटा गया है। लघु उविकास में जीव जातियों की प्रत्येक समष्टि में पीढ़ी-दर-पीढ़ी होते रहने वाले आनुवंशिक (genetic) परिवर्तनों का आंकलन होता है, जबकि वृहत् उविकास में विस्तृत स्तर पर जीवों में नयी-नयी संरचनाओं के विकास, विकासीय प्रवृत्तियों (evolutionary trends), अनुकूलन

योग्य प्रसारणों (adaptive radiations), विभिन्न जीव जातियों के मध्य विकासीय सम्बन्धों (phylogenetic relationships) तथा जीव जातियों की विलुप्ति का अध्ययन किया जाता है।

समष्टि या जनसंख्या के प्रत्येक सदस्य में विभिन्न आनुवंशिक लक्षणों के विभिन्न जीनरूप होते हैं। इसके सभी आनुवंशिक लक्षणों के जीनरूपों को सामूहिक रूप में इसका जीन समूह या जीन प्ररूप (genome) कहते हैं। विभिन्न सदस्यों के बीच दृश्यरूप लक्षणों की विभिन्नताओं से स्पष्ट होता है कि इतनी ही विभिन्नताएँ इनके जीन प्ररूपों में भी होनी आवश्यक हैं। इस प्रकार एक समष्टि के सभी सदस्यों में उपस्थित सम्पूर्ण युग्मविकल्पी जीन्स (allelic genes) को मिलाकर समष्टि की जीनराशि (gene pool) कहते हैं। यद्यपि समष्टि के प्रत्येक लक्षण के दो ही युग्मविकल्पी जीन्स होते हैं, परन्तु सामान्यतः उत्परिवर्तनों (mutations) के होते रहने के कारण पूरी समष्टि में प्रत्येक जीन के कई युग्मविकल्पी (allelomorphic) स्वरूप भी हो सकते हैं। इसे जीन की बहुरूपता कहते हैं। इस जीनी बहुरूपता (polymorphism) में प्रत्येक स्वरूप की बारम्बारता अर्थात् आवृत्ति को युग्मविकल्पी

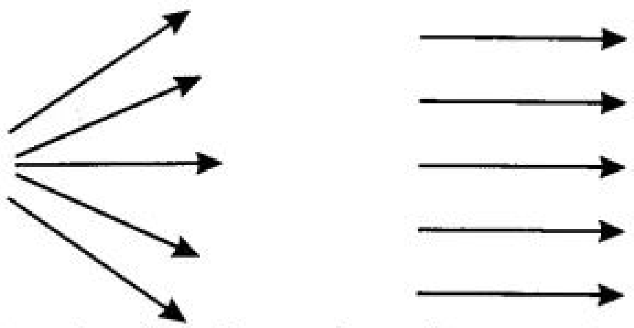

चित्र–समष्टियों (जनसंख्याओं), जीन्स तथा विकास में सम्बन्ध का रेखाचित्र

आवृत्ति (allelic frequency) कहते हैं जो महत्त्वपूर्ण है। ऐसी जीन्स की विभिन्नताएँ तथा आवृत्तियों में इस प्रकार की विभिन्नताएँ भिन्न-भिन्न स्थानों की समष्टियों के मध्य लघु उविकासीय अपसारिता (micro evolutionary divergence) को प्रदर्शित करती हैं।

हार्डी एवं वीनबर्ग (Hardy and weinberg, 1908) ने स्पष्ट किया कि जिन समष्टियो में आनुवंशिक परिवर्तन नहीं होते, उनमें पीढ़ी-दर-पीढ़ी युग्मविकल्पी जीन्स और जीनरूपों की आवृत्तियों (frequencies) में एक सन्तुलन बना रहता है, क्योंकि प्रबल जीन अप्रबल जीन को समष्टि की जीनराशि से हटा नहीं सकते। इसे हार्डी-वीनबर्ग सन्तुलन (Hardy-Weinberg equilibrium) कहते हैं।

यह वास्तव में मंडल के प्रथम पृथक्करण अर्थात् युग्मकों की शुद्धता के नियम (law of segregation or purity of gametes) का ही तार्किक निष्कर्ष (logical consequence) है। इसे हार्डी-वीनबर्ग ने गणितीय समीकरणों द्वारा समझाया जिन्हें सम्मिलित रूप से हार्डी-वीनबर्ग का नियम (Hardy-Weinberg rule) कहते हैं। इस नियम में पूर्वानुमान किया जाता है कि समष्टि बड़ी है। इसमें युग्मकों का संयुग्मन (union of gametes) अनियमित तथा संयोगिक (random) होता है अर्थात् विकास को प्रेरित करने वाली कोई प्रक्रिया समष्टि (आबादी) को प्रभावित नहीं करती है।

विकास के कारण

ऐसी प्रक्रियाएँ जिनके द्वारा किसी समष्टि में हार्डी-वीनबर्ग सन्तुलन (Hardy-Weinberg equilibrium) समाप्त होता

है, विकास का कारण होती हैं तथा समष्टि में विकास की दिशा भी निर्धारित करती हैं। इन्हें विकासीय अभिकर्मक कहते हैं। विकास के आधुनिक संश्लेषणात्मक सिद्धान्त को प्रमुखत: निम्नलिखित विकासीय अभिकर्मकों के आधार पर स्पष्ट किया गया है –

1. **उत्परिवर्तन एवं विभिन्नताएँ** (Mutations and variations) – जीन्स के रासायनिक संयोजन में परिवर्तनों के कारण होने वाले ये उत्परिवर्तन प्रायः अप्रभावी होते हैं अन्यथा हानिकारक। सामान्यतः इनके घटित होने की दर भी बहुत कम होती है। इस प्रकार लाखों युग्मनजों (zygotes) में से किसी में ही उत्परिवर्तित जीन होता है। कुछ भी हो विकास के लिए आनुवंशिक परिवर्तन स्थापित करने में उत्परिवर्तनों तथा अन्य विभिन्नताओं का काफी महत्त्व होता है, क्योंकि विकासीय प्रक्रिया बहुत लम्बा समय लेती है।

2. **देशान्तरण एवं जननिक पृथक्करण** (Migration and Genetic Isolation) – अनेक जीव – जातियों में इनकी विभिन्न समष्टियों के बीच इनके सदस्यों का आवागमन होता रहता है। इसे देशान्तरण कहते हैं। इसी प्रकार जब कोई दो समष्टियाँ किसी भौगोलिक अवरोध के कारण अलग-अलग हो गयी हैं और पास-पास आने पर आपस में जनन कर सकती हैं, किन्तु यदि इनमें प्रजनन नहीं हो सकता तो इनको भिन्न-भिन्न जाति मान लिया जाता है। किसी समष्टि में अन्य समष्टियों से आये हुए सदस्य अर्थात् आप्रवासी (immigrants) किसी समष्टि को छोड़कर अन्य समष्टियों में चले जाने वाले सदस्य अर्थात् उत्प्रवासी (emigrants) समागम करके समष्टियों की जीनराशि में नवीन जीन्स ला सकते हैं, हटा सकते हैं अथवा युग्मविकल्पी जीन्स की आवृत्तियों को बदल सकते हैं।

3. **जीनी अपवहन** (Genetic Drift) – विभिन्न सदस्यों की प्रजनन दर की विभिन्नता के कारण, जीव जातियों की छोटी-छोटी समष्टियों पर हार्डी-वीनबर्ग सन्तुलन लागू नहीं होता है तथा पीढ़ी-दर-पीढ़ी सभी युग्मविकल्पी जीन्स की आवृत्तियों को समान रूप से प्रसारण होते रहना प्रायः असम्भव होता है। यह जीनी अपवहन है जिसमें कभी-कभी हानिकारक युग्मविकल्पी जीन्स की आवृत्ति इतनी बढ़ जाती है कि समष्टि के कई सदस्य समाप्त ही हो जाते हैं। इस प्रकार समष्टि और छोटी हो जाती है और इसमें आनुवंशिक विभिन्नताएँ भी बहुत कम रह जाती हैं। कभी-कभी महामारियों (epidemics), परभक्षण (predation) आदि के कारण भी छोटी समष्टियों में जीनी अपवहन हो सकता है।

4. **असंयोगिक समागम** (Non-Random Mating) – पेड़-पौधों की अनेक जातियों में स्वपरागण (self-pollination) द्वारा प्रजनन होना, मानवों की कुछ जनसंख्याओं में सजातीय विवाह आदि प्रकार के जनन के कारण समयुग्मजी (homozygous) जीनरूपों की संख्या बढ़ती जाती है तथा हार्डी-वीनबर्ग सन्तुलन भी नहीं रहता है।

5. **जीवन संघर्ष तथा प्राकृतिक चयन** (Struggle for Existance and Natural Selection) – किसी भी समष्टि में प्रत्येक जीव जीवित रहने के लिए भोजन, सुरक्षित स्थान, प्रजनन के लिए साथी की खोज आदि के लिए संघर्षरत रहता है। इसी में से अधिकतम अनुकूलित भिन्नता वाले जीव के चयन को डार्विन (Darwin) ने प्राकृतिक चयन अथवा योग्यतम की उत्तरजीविता (survival of fittest) बताया। इस प्रकार, प्राकृतिक चयन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके कारण जीवों की समष्टियों में जीनरूपों तथा युग्मविकल्पी जीन्स, दोनों की ही आवृत्तियों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन होते रहते हैं। इस प्रक्रिया में जिस सदस्य के कुल आनुवंशिक लक्षण अथवा जीन प्ररूप (genome) इसे तात्कालिक वातावरणीय दशाओं में, अनुकूलन (adaptation) की अधिक क्षमता प्रदान करते हैं, वह अन्य सदस्यों की तुलना में सफलतापूर्वक जीवन व्यतीत करता है। इससे स्पष्ट है कि प्राकृतिक चयन के कारण, समष्टियों में पीढ़ी-दर-पीढ़ी

अधिक लाभदायक लक्षणों के जीनरूपों एवं युग्मविकल्पी जीन्स की आवृत्तियाँ । अधिकाधिक बढ़ती जाती हैं तथा कम लाभदायक लक्षणों के जीनरूपों और युग्मविकल्पी जीन्स की आवृत्तियाँ कम होती जाती हैं।

उपर्युक्त सभी प्रक्रियाओं के सम्मिलित प्रभाव से जीव जातियों की प्राकृतिक समष्टियों की जीनराशि में धीरे-धीरे जो परिवर्तन होते हैं, अति महत्त्वपूर्ण हैं। इन्हीं से प्राकृतिक चयन की प्रक्रिया समष्टि की अनुकूलन योग्य (adaptive) विकासीय दिशा (evolutionary direction) का मार्ग प्रशस्त करती है।

प्रश्न 5.
लैमार्कवाद व डार्विनवाद की तुलना रेखाचित्रों सहित कीजिए। **(2017)**
उत्तर
लैमार्कवाद वे डार्विनवाद की तुलना

लैमार्कवाद	डार्विनवाद
• लैमार्क के अनुसार जिराफ के पूर्वजों की गर्दन सामान्य लम्बाई की थी, क्योंकि इन्हें तत्कालीन वातावरण में घास-फूस सहज ही उपलब्ध हो जाती थी।	• डार्विन के अनुसार तत्कालीन समय में जिराफ के पूर्वज दोनों प्रकार के थे अर्थात् छोटी गर्दन वाले भी तथा लम्बी गर्दन वाले भी।
• कालान्तर में वातावरण शुष्क हो जाने के कारण इन्हें ऊँचे वृक्षों की पत्तियाँ खाने के लिए गर्दन को खींचकर प्रयोग करना पड़ा।	• इनमें गर्दन की अलग-अलग लम्बाई वंशागत थी।
• निरन्तर गर्दन को ऊँचाई की ओर खींचकर प्रयोग करने के कारण गर्दन की लम्बाई धीरे-धीरे बढ़ती गयी।	• वातावरणीय परिवर्तन के कारण दोनों प्रकार के जिराफों को जीवन संघर्ष का सामना करना पड़ा जिसमें लम्बी गर्दन वाले जिराफ विजयी हुए।
• गर्दन की बढ़ती हुई लम्बाई एक उपार्जित लक्षण बन गयी जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी वंशागत होती रही तथा परिणामस्वरूप लम्बी गर्दन वाले जिराफों की वर्तमान जाति विकसित हुई।	• प्राकृतिक वरण के फलस्वरूप लम्बी गर्दन वाले जिराफों की सन्तति में वृद्धि हुई तथा छोटी गर्दन वाले जिराफ धीरे-धीरे लुप्त हो गये। इस प्रकार लम्बी गर्दन वाले जिराफों की वर्तमान जाति विकसित हुई

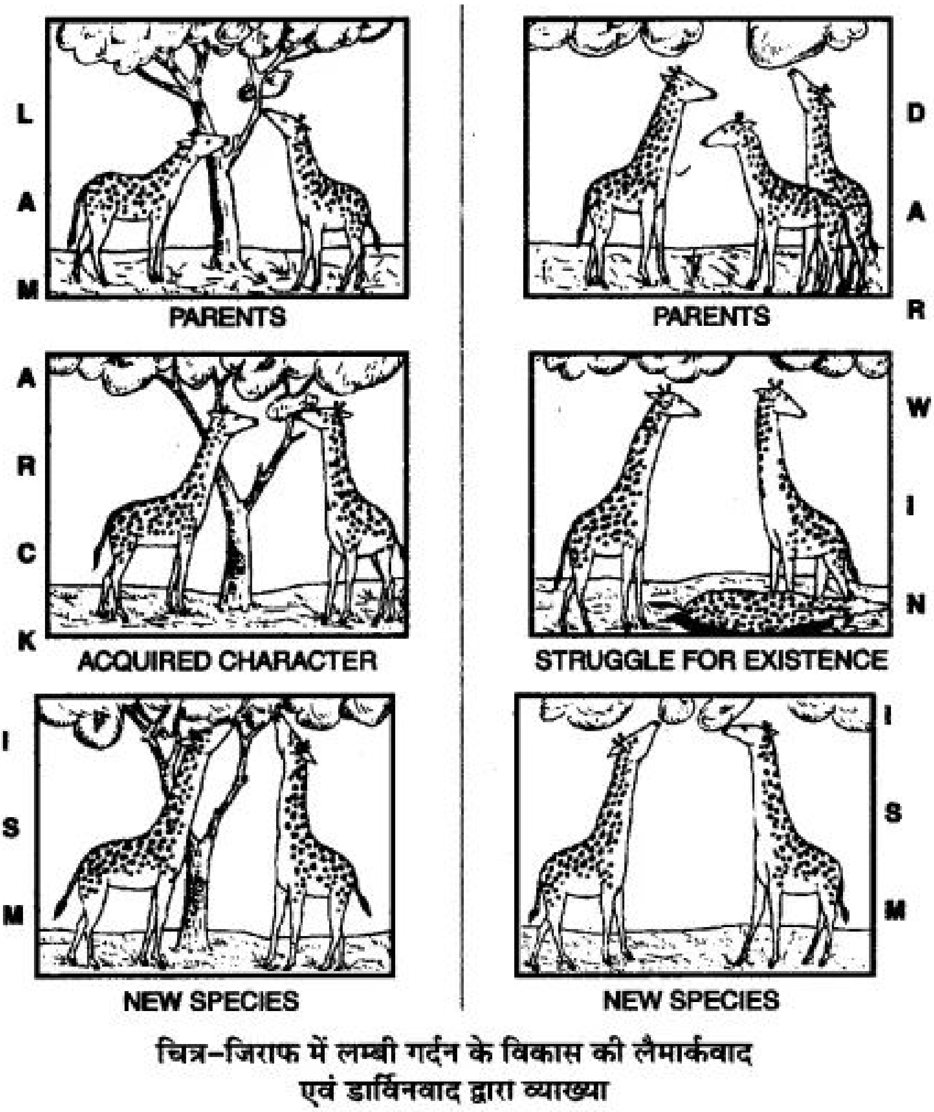

चित्र-जिराफ में लम्बी गर्दन के विकास की लैमार्कवाद एवं डार्विनवाद द्वारा व्याख्या

प्रश्न 6.

किस कल्प में तथा किन निकटतम पूवर्षों से आधुनिक मानव का विकास हुआ? **(2016)**

उत्तर

लगभग 40 मिलियन वर्ष पूर्व ड्रायोपिथिकस तथा 14 मिलियन वर्ष पूर्व रामापिथिकस नामक नरवानर विद्यमान थे। इन लोगों के शरीर बालों से भरपूर थे तथा ये गोरिल्ला एवं चिम्पैंजी जैसे चलते थे। रामापिथिकस मनुष्यों जैसे थे जबकि ड्रायोपिथिकस वनमानुष (ऐप) जैसे थे। इथोपिया तथा तंजानिया में कुछ जीवाश्म (फोसिल) अस्थियाँ मानवों जैसी प्राप्त हुई हैं। ये जीवाश्म मानवीय विशिष्टताएँ दर्शाते हैं जो इस विश्वास को आगे बढ़ाती हैं कि 3 – 4 मिलियन वर्ष पूर्व मानव जैसे नर वानर गण (प्राइमेट्स) पूर्वी-अफ्रीका में विचरण करते रहे थे।

लगभग 5 मिलियन वर्ष पूर्व ओस्ट्रालोपिथेसिन (आदिमानव) सम्भवतः पूर्वी अफ्रीका के घास स्थलों में रहता था। होमो इरैक्टस संभवतः मांस खाता था। निएण्डरथल मानव, 100,000 से 40,000 वर्ष पूर्व लगभग पूर्वी एवं मध्य एशियाई देशों में रहते थे। वे अपने शरीर की रक्षा के लिए खालों का इस्तेमाल करते थे और अपने मृतकों को जमीन में गाड़ते थे। होमो सेपियंस अफ्रीका में विकसित हुआ और धीरे-धीरे महाद्वीपों से पार पहुँचा तथा विभिन्न महाद्वीपों में फैला, इसके बाद वह भिन्न जातियों में विकसित हुआ। 75,000 से 10,000 वर्ष के दौरान हिमयुग में यह आधुनिक युगीन मानव पैदा हुआ। मानव द्वारा प्रागैतिहासिक गुफा-चित्रों की रचना लगभग 18,000 वर्ष पूर्व हुई। कृषि कार्य लगभग 10,000 वर्ष पूर्व आरम्भ हुआ और मानव बस्तियाँ बनना शुरु हुईं। बाकी जो कुछ हुआ वह मानव इतिहास या वृद्धि का भाग और सभ्यता की प्रगति का हिस्सा है।